डॉ. उषा दुबे हिन्दी -विभाग
महर्षि दयानन्द महाविद्यालय
परेल मुंबई -12

हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी जीवन का चित्रण

विषय प्रवेश

देश की आजादी को 75 वर्ष पूरे हुए। किंतु यह आजादी सीमित वर्गों तक ही रह गई। एक वर्ग ऐसा भी है,जो वर्तमान समय में भी अपनी अस्मिता के लिए लड़ रहा है। वह समाज कोई और नहीं बल्कि हमारी धरोहर के रक्षक आदिवासी समाज है। देश पूर्णत: विकसित तब तक नहीं कहा जाएगा, जब तक समाज के हर एक तबके का विकास नहीं होगा। हर पहलुओं को बारीकी से देखने की आवश्यकता है। तभी भारत देश विकास के मार्ग पर अग्रसर हो पाएगा, तथाकथित समाज जी धारा में है, उसी धारा में आदिवासी समाज को जोड़ने की आवश्यकता है। तो ही हमारी संस्कृति को हम संरक्षित कर पाएंगे। क्योंकि यह एक मात्र समाज है जो प्रकृति से सापेक्ष रूप से जुड़ा हैं। इसमे संदेह नही है कि प्रकृति के संरक्षक यही लोग हैं। साहित्य एक माध्यम के रूप में आदिवासी समाज के प्रश्नों, उनकी पीड़ाओं तथा संघर्षों को समाज के सामने प्रस्तुत करता है। क्योंकि साहित्य समाज का प्रतिबिंब है। साहित्य के माध्यम से जन जागृति हो, ताकि उपेक्षित लोगों तक हमारे तथाकथित देश के रखवालों तक उनकी आवाज़ पहूंचे और ये भी सामान्य जीवन व्यतीत करें। स्वातंत्र्योत्तर कालीन तथा वर्तमान समय के साहित्य में आदिवासी समाज से जुड़े प्रश्नो तथा उनकी जीवन के चित्रों का सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही धरातल पर देखा गया है। आदिवासी मूलक उपन्यास में समय के साथ आते हुये परिवर्तनों को भी आंकित किया गया है। रांगेय राघव का कब तक पुकारूँ, शानी का साँप और सीढ़ी, संजीव का धार, मैत्रयी पुष्पा का अल्मा कबूतरी आदि ऐसे उपन्यास है, जो उनके जीवन की लंबी यात्रा को बयां करते हैं। उनकी संस्कृति विशेष से की गाथा को रणेन्द्र के ग्लोबल गांव के देवता, हरिराम मीणा का धूणी तपे तीर तथा महूआ माजी का मरंग गोड़ा नीलकंठ हूआ जैसे उपन्यासों को रचकर आदिवासियों की सदियों से चली आ रही अस्मिता की लड़ाई को उजागर किया गया है।

सदियों से आदिवासी विमर्श के प्रश्न उठ रहे हैं, किंतु इसे गहनता से सोचा नहीं जा रहा है आवश्यकता है कि इस मुद्दे पर लोग गंभीर बने। ताकि वे मुख्य धारा से जुड़ सके । आदिवासियों की समस्याओं को सामने लाया जाए। इस उद्देश्य से मैंने यह विषय चुना और

भविष्य में इस पर विस्तृत काम करने का भी सोच है। ताकि आदिवासी समाज से जुड़े हुए महत्वपूर्ण बिंदुओं पर विचार हो। वर्तमान में मैंने संक्षिप्त और महत्वपूर्ण जानकारी को ही आपके समक्ष रखा है।

आदिवासी समाज अवधारणा एवं विस्तार

दुनियाभर में जनजातियों की संख्या अधिक मात्रा में है। जनजाति शब्द से ही ज्ञात होता है कि इनका अपना अलग धर्म समूह होगा, उनकी अपनी अलग मान्यताएं होगी। भारत में भी विविध जनजातियाँ हैं, जो सभ्य समाज से अलग प्रकृति प्रेमी तथा जमीन से जुड़े हैं। वैरियर एल्विन के अनुसार "आदिवासी भारतवर्ष की वास्तविक स्वदेशी उपज है, ये वे प्राचीन लोग है जिनके नैतिक आधार व दावे हजारों वर्ष पुराने हैं।"1

पहले विभिन्न जनजातियों के लोग अपने कबीले को जाति ही कहते थे। जाति एवं जनजाति के लिए जात (caste) शब्द ही प्रयुक्त होता था। आगे चलकर जात तथा जनजातीय शब्द प्रयुक्त होने लगा। (caste, tribes) । जगदीश मीणा ने जनजाति की परिभाषा के विषय में लिखा है कि "जनजातियों का वर्गीकरण उन प्राचीन आदिम जातियों में से किया गया है, जो मूलतः एक निश्चित क्षेत्र में निवास करते रहे हैं, न कि जीवन शैली स्वतंत्र प्रकृति की है। प्रत्येक क्षेत्र में उनकी भाषा एवं सामाजिक जीवन में कुछ विभिन्नताएँ देखने को अवश्य मिलती है। लेकिन उनका सांस्कृतिक जीवन एवं परंपराएं कहीं ना कहीं एक दूसरे से जुड़ी हुई है। वे प्राय संयुक्त परिवारों के रूप में अपना जीवन यापन करते हैं।"2

"1891 ई. की जनगणना में सर्वप्रथम बाइन्स ने खेतिहर एवं पशुपालक जातियों के एक वर्ग के रूप में जंगली जनजातियों को अलग दिखाया। अगली दो जनगणनाओं में क्रमश: हर्बट रिजले एवं गेट द्वारा उन्हें 'जीववादी' के रूप में अलग दिखाया गया। 1921 ई. की जनगणना रिपोर्ट में जीववायु (animis) के स्थान पर जनजातीय धर्म (tribal relision) शब्द प्रयुक्त हुआ। इन जनगणनाओं में असभ्य जनजाति (प्रिमिटिव ट्राइब) शब्द का प्रयोग होता रहा। हट्टन ने 1931 ई. की जनगणना रिपोर्ट में पुन: जंगली या वन्य जनजाति शब्द का प्रयोग किया।"[3]

इन्हें कबीला, आदिवासी, वन्यजाति, ट्राइब्स आदि कहा जाता है। पुरानी सोच रूढ़िवादी तथा परंपरावादी होने के कारण ये सभ्य समाज की श्रेणी में नहीं आते हैं। ये जंगलों तथा पहाड़ी

प्रदेशों शहरों से दूर गांव में बसते हैं। ये सांस्कृतिक तथा सामाजिक दोनों ही दृष्टि से भिन्न हैं। भारतीय संविधान में आदिवासी के लिए अनुसूचित जनजाति शब्द का प्रयोग किया गया है। इसमें सभी प्रमुख जनजाति सम्मिलित है। यहां तक की अनुसूचित श्रेणियों में पिछड़ी जाति भी सम्मिलित की गई है। भारतीय जनजातियां अधिकतर झारखंड, त्रिपुरा, नागालैंड, मिजोरम, असम, छत्तीसगढ़ आदि राज्यों में स्थित है। जनजातियों का अपना समुदाय है, अपनी जाति है। जिसके कारण इन्हें आदिवासी, जनजाति, आदिमजाति, वनवासी आदि नामों से अभिहित किया जाता है। यह सब एक ही रूप में जाने जाते हैं। वह है जनजातीय या आदिवासी। आदिकाल से ही कई किताबों में इनका उल्लेख मिलता है। कभी इनकी संख्या अधिक हुआ करती थी, लेकिन सभ्य बनने की होड़ में कई वन्यवासी शहरों में आकर बस गए और अपने आप को आदिवासी नहीं मानते। इन हालातों के बावजूद कई लोग ऐसे भी हैं, जो अपनी जमीन से जुड़े हुए हैं। कठिन से कठिन परिस्थितियों का सामना करते हुए अपनी पहचान बनाए हुए हैं। साथ ही अपनी परंपरा का निर्वाह भी कर रहे हैं। आधुनिक सभ्यता की परछाई में यह सीधे-साधे लोग भी फंसते जा रहे हैं। आदिवासियों के सीधे और सरल जीवन के संदर्भ में रमणिका गुप्ता लिखती है कि "सदियों पहले आर्यों से परास्त होकर ये लोग जंगलों में खदेड़ दिये गए थे। सामूहिक ज़िंदगी जीनेवाले प्रकृति प्रेमी, प्रकृति के सहयात्री और सहयोगी आदिवासी समूह संपत्ति की धारणा व लिंग विभेद के भेदों के बिलकुल अंजान थे। वे सदियों से जंगलों के फल, कंद-मूल खाकर नदियों के पेट में या जंगलों में या झूम खेती करते हुये, बड़े स्वाभिमान सहित अपनी भाषा संस्कृति और जीवन शैली को जिंदा रखे हुये थे"।4

भूमंडलीकरण और औद्योगिकीकरण जनजातीय संस्कृति पर दिन-ब-दिन खतरा बनता जा रहा है। अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए यह लोग हर दिन चुनौतियों का सामना कर रहे हैं। सामान्य सरल जीवन जीने वाले यह समाज के लोग आधुनिक सभ्यता के आगे टिक नहीं पाते हैं। इनकी दुनिया, इनकी जमीन तथा परंपराएं पूजा-पाठ, रूढ़ियों को जीवित रखने तक ही सीमित है, और वह इसी में अपने आप को प्रसन्न रखते हैं। मधु कांकरिया लिखती है कि "आदिवासियों को जंगल नदी और पहाड़ों से गिरे उनके प्राकृतिक और पारंपरिक परिवेश से बेदखल किया जा रहा है अभी तक वह अपने विश्वासों रीति-रिवाजों लोक नृत्य और लोकगीतों के साथ कुओं, मवेशियों, नदियों, तालाबों और जड़ी बूटियों से संपन्न एक जन समाज में रहता आया है। इसकी अपनी विशिष्ट संस्कृति रही है। उसका अपना विकसित अर्थतंत्र था, वह अपने पुश्तैनी पारिवारिक पारंपरिक और कृषि आधारित कुटीर धंधों से पारंगत

था। बढ़ईगिरी, लोहागिरी, मधु पालन, दोना, पत्तल, मधु उत्पादन, रस्सी, चटाई, बुनाई जैसे काम उसे विरासत में मिले थे, पर आज खुले बाजार की अर्थव्यवस्था ने सदियों से चले आए। उसके पुश्तैनी और पारंपरिक धंधे को चौपट कर डाला है।
आदिवासी जनजाति अपने उत्सव और परंपराओं के लिए प्रसिद्ध है। जनजातियों में भी कई उपजातियां हैं। गुर्जर, थारू, बुक्सा, राजी भोटिया, गारो, खासी, भील, गोंड, संथाल, हो और मुंडा आदि जनजातियां हैं। यह सभी जनजातियां भिन्न-भिन्न राज्यों में स्थित हैं। जैसे उत्तर तथा पूर्वोत्तर क्षेत्र, मध्य क्षेत्र, दक्षिण क्षेत्र और द्विपीय क्षेत्र।

वर्तमान समय में जनजातीय समाज शहरों या कहे कि आधुनिकता से ना जुड़ने के कारण यह लोग काफी हद तक पिछड़े हुए हैं, जो सुविधा या जिन चीजों से इनको जुड़ना चाहिए ये जुड़ नहीं पा रहे हैं। शहरों से दूर रहने के कारण जो जरूरी भाषा है, वह भी सीख नहीं पाते हैं। आसामी और हिंदी ही ज्यादातर इनकी संपर्क भाषा है। इनका अपना कोई एक धर्म नहीं है, कोई हिंदू धर्म का निर्वाह करता है या कोई दलित या फिर बौद्ध धर्म का। अंग्रेजों ने कई लोगों को ईसाई धर्म अपनाने के लिए मजबूर कर दिया था। नतीजन अधिकतर लोग क्रिश्चियन धर्म का पालन करते है, और बौद्ध धर्म का। सरकारी नियमों में कई नए नियम तथा योजनाएं इनके लिए पास तो होती है, लेकिन शिक्षा तथा भ्रष्टाचार के कारण इन तक नहीं पहुंच पाता है।
ब्रिटिशकाल में अंग्रेजों ने जब हमारी धार्मिक असहिष्णुता को देखा और उन्हें लगा कि धर्म के नाम पर ही हमें अलग कर सकते हैं। तब उन्होंने 'फूट डालो और नीति करो' वाली राजनीति अपनाई यही राजनीति उन्होंने जनजाति और सामान्य लोगों के बीच भी की। स्वतंत्रता संग्राम से उन्होंने इन्हें भाग लेने नहीं दिया। एक ओर वे फूट डालने की नीति अपना रहे थे और दूसरी ओर विदेशी पादरियां उनका धर्म परिवर्तन करने का कार्य करने में लगे थे। जनजातियों का अंधविश्वास तौर तरीके परंपराओं में भिन्नता के कारण हिंदू ब्राह्मणों ने उन्हें गैर हिंदू कहा। बावजूद कई ऐसे आदिवासी हैं जो अपने आप को हिंदू मानते हैं। हिंदुओं के देवी देवताओं की पूजा पाठ करना, उन्हें मानना सभी व्यवहारों का पालन करते हैं।

हिन्दी आदिवासी मूलक उपन्यास

कब तक पुकारूँ

रांगेय राघव द्वारा कृत यह उपन्यास का छठा संस्करण है । 1980 में प्रकाशित इस उपन्यास के प्रकाशक राजपाल एंड सन दिल्ली से इस उपन्यास में करनट जनजाति का चित्रण किया गया है। करनट मूलतः खानाबदोश जीवन व्यतीत करते हैं। इनका मूल काम औषधि बेचना, चोरी करना, शिकार कर उनके खाल को बेचना, रस्सियों पर करतब दिखाना आदि इनका प्रमुख व्यवसाय है। इन जातियों में विशेषत: घर चलाने की जिम्मेदारी औरतों पर होती है। भले ही उन्हें कितने ही शारीरिक संबंध बनाने पड़े। सेक्स के आधार पर वे नैतिक और अनैतिक कुछ नहीं मानते हैं। लेखक ने यह बताने का प्रयास किया है कि ये जनजाति केवल आर्थिक आधार पर ही नहीं बल्कि सामाजिक धरातल के साथ-साथ शैक्षिक रूप से भी पीछे हैं।

उपन्यास के प्रमुख पात्र सुखराम, प्यारी तथा कजरी पूरी कथा इन्हीं के इर्द-गिर्द घूमती है। बीच-बीच में धापों, बाँके सूसन, रुस्तम खान और भी कई ऐसे पात्र हैं जिनकी कथाएं हमें देखने मिलती है। उपन्यास का मुख्य पात्र सुखराम करनट जाति का ही है जो सामंतवादी विचारधारा, शोषण, अत्याचार आदि का विद्रोह करता है। करनट जाति में जन्म होने के बावजूद वह अपने आप को अधूरे किले का मालिक बताता है। उसके पिता ठाकुर और माँ नटनी थी। उसके माता-पिता दोनों की ही मृत्यु हो चुकी थी। सुखराम की पत्नी प्यारी खेल दिखाकर पैसे कमाती है। परंतु आए दिन पुलिस या फिर ठेकेदार जैसे लोग उन्हें तंग किया करते हैं। वह जलालत भरी जिंदगी जीने के लिए ये लोग विवश है। कजरी का पति शराबी था, इसलिए वह अपने पति का साथ छोड़कर सुखराम के पास आ जाती है। किल्लत भरी जिंदगी को देखकर सुखराम इसलिए अपने आप को ठाकुर कहलावाना अधिक पसंद करता है। इस संबंध में डॉ ज्ञानचंद गुप्त लिखते हैं कि खुले आसमान के नीचे धरती माता की गोद में सोने वाले यह नट घास की तरह पैदा होते हैं, और रौंदे जाते हैं। खेत-खलियानों में मजदूरी करके पेट पालने से भी यह वंचित है क्योंकि कोई इनका भरोसा नहीं करता। इनकी स्त्रियां ब्राह्मण ठाकुरों एवं

पुलिस वालों से यौन संबंध निर्वाह कर रोजी-रोटी चलती हैं"।5 प्यारी अपने पति सुखराम और नटों की रक्षा के लिए थानेदार रुस्तम खाँ के साथ रहने लगती है। सुखराम को यह सब नहीं अच्छा लगता। भले ही उनकी जाति में औरत को सिर्फ पुरुष की भोग्य माना जाता है। प्यारी स्वयं अपनी औरत की जिंदगी को बदत्तरर मानते हुए कहती है कि "मैं कमीन अनपढ़ नीचे में नीच, जाति की नीच बिरादरी के मेरे लोग नीच, पेट की भूखी और नंगी हूं"।6 उपन्यास में ब्राह्मणों तथा ठाकुरों आदि वर्ग का भी प्रसंग आता है। उपन्यास में धूपों की मौत का चित्रण भी भयावह है। बाकें और ठाकुर उसके साथ बलात्कार करते हैं जिसकी वजह से उसके पूरे समाज में आक्रोश फैल जाता है किंतु वहां भी इनकी सुनवाई नहीं होती है। वहां सिर्फ ठाकुरों, ब्राह्मण आदि बड़े वर्गों की ही लोग सुनते हैं। सुखराम और खचेरा को रुस्तम खान वहां से बेइज्जत करके बाहर निकाल देता है। इस क्षण को देख कर लेखक कई बार बहुत आशावादी दृष्टिकोण अपनाते हुए कहते हैं कि "शोषण की घुटन सदा के लिए मिट जाएगी। सत्य सूर्य है। वह मेघों से सदैव के लिए घिरा नहीं रहेगा। मानवता पर से यह बरसात एक दिन अवश्य दूर होगी और तब नई शरद में नए फूल खिलेंगे। नया आनंद व्याप्त हो जाएगा"।7 यह बात और है कि सुखराम स्वप्न रूपी आशा को पूरा होते नहीं देख पाता है। उपन्यास में औरत की जिंदगी का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया गया है "क्या विडंबना है कि औरत का काम क्या यही है? असल में करनट समाज खानाबदोश, शोषित दलित एवं घर उत्पीड़न को झेलने वाला समाज है जिसमें आजीविका या रोटी नैतिकता के सब मानदंडों पर भारी है"8 औरत की जिंदगी को लेखक इस प्रकार बयां करते हैं "इन कबीलों की कोई नैतिकता नहीं होती। इनमें मर्द औरत को वेश्या बनाकर उसके द्वारा धन कमाते हैं। करनटों में यह छूट है वहां कोई बुराई 'सेक्स' आधार पर नहीं मानी जाती।' 9

प्यारी का रुस्तम खाँ के पास जाना है इस बात का सूचक है कि स्त्रियां केवल शारीरिक सुख के लिए नहीं बल्कि अपने परिवार और समाज को सुरक्षित करना चाहती है। संपूर्ण उपन्यास में कई बार इस बात का जिक्र हुआ है कि सुखराम अधूरे किले का मालिक बनकर ठाकुर बनना चाहता है। इसलिए वह अपनी बेटी को ठकुरानी कहने वाली बात से सराबोर हो उठता है। किंतु समाज और उच्च वर्ग के शोषणवादी प्रवृत्ति के कारण चंदा को अपनी जान गंवानी पड़ती है। प्रस्तुत उपन्यास करनटों के जीवन संघर्षों का सच्चा दस्तावेज है। जिनमें महिलाओं की नारकीय जीवन के कई मार्मिक प्रसंग को

चित्रित किया है। गरीबी, भुखमरी, अशिक्षा अंधविश्वास आदि कई ऐसी ही समस्या है जो उभर कर सामने आई है। अपने समाज को इज्जत मिले। इस जद्दोजहद को सुखराम के माध्यम से बताया गया है।

वरुण के बेटे

वरुण के बेटे उपन्यास नागार्जुन द्वारा रचित लघु उपन्यास है। जिसमें मछुआरों के जीवन संघर्ष की गाथा को यत्र-तत्र प्रस्तुत करती है। उपन्यास के दो महत्वपूर्ण पात्र है। भोला और खुरखुन और उसके परिवार के इर्द-गिर्द घूमती है। भोला खुरखुन से समृद्ध है। और खुरखुन आर्थिक स्थिति से त्रस्त है। इनके जीवन का आधार मत्स्यालय से जुड़ा हुआ है। भोला और खुरखुन दोनों ही मछली का व्यापार शहरों से करते हैं। कई एकड़ जमीन से घिरा यह तालाब कई घरों की रोजी-रोटी का साधन है। दो-चार घर मिलकर जाल बनाने का काम करते हैं। सभी एक- दूसरे के सुख-दुख के साथी हैं। पोखरे के आस-पास का कुछ इलाका वहां के जमींदार के अधिकार में था।

मोहन माझी देश के प्रति अपने तथा समाज के प्रति समर्पित स्वाधीनता संग्राम का सिपाही था। गरीबों पर होने वाले अत्याचार के विरोध में हमेशा उनके साथ खड़ा रहता था। कथा में मंगल और माधुरी के प्रेम प्रसंग का भी चित्रण है, किंतु दोनों का ही विवाह अलग-अलग घरों में होता है। माधुरी के ससुराल वाले उसे पीटते रहते थे। एक दिन माधुरी अपना ससुराल छोड़कर अपने पिता खुरखुन के पास चली आती है। एक दिन गांव में बाढ़ आती है पूरा गांव का गांव बाढ़ की चपेट में जाता आ जाता है। लोग पास के रेलवे स्टेशन के मालगाड़ी में शरण लेने लगते हैं। मोहन मांझी ने उस वक्त गांव वालों की मदद कर स्वयं सेवक संघ की स्थापना कर माधुरी को कोषाध्यक्ष बना दिया। माधुरी भी दिन-रात मेहनत कर उसी में लगी रहतीहै। पिता खुरखुन और माधुरी को मेहनत देखकर गौरवान्वित महसूस करता है। यही संघ गरीबों के अधिकारों के लिए भी कार्य करता है।

सतघरा के जमींदारों ने गांव वालों की विरोध में वहाँ के गढ़पोखरों में जाल डालने पर साथ देती है। गांव वालों के विरोध करने पर उन्हें गिरफ्तार कर जेल में डाल देने की धमकी दे दी गई। भोले खुरखुन दोनों के अथक प्रयास के बावजूद उन्हें खाली हाथ गांव से लौटना पड़ा। पोखरो

पर मालिकाना हक सरकार ने अपने हाथ में ले लिया। माधुरी, मंगल नकक्षेदी आदि लोगों ने कागजात पर हस्ताक्षर देने के बदले जेल जाना उचित समझते हैं। पुलिस गाड़ी में बैठकर वे सभी भारत माता की जय जयकार के करने लगे। उपन्यास में मछुआरे के जीवन संघर्ष के साथ-साथ प्रशासन द्वारा उन पर होने वाले अत्याचार को यथा सत्य प्रस्तुत किया है।

जंगल के फूल

1908 में अंग्रेजों द्वारा बस्तर जिले में हुए भूमकर आंदोलन को वहां के लोग भूलते नहीं है। अंग्रेजों द्वारा भूमि छीनने की व्यथा पर यह समाज अपने जमीन को छोड़कर जाने की वजह संघर्ष करना अधिक बेहतर समझते हैं। उपन्यास में बस्तर गढ़ के सरदार सुलकसाए,महुआ हिरमें, मुंदरी झालरसिंह आदि ऐसे पात्र हैं। जिनके आस-पास कहानी पूरी चलती है।

सुलकसाए हिरमें की बीमारी के कारण उसे नेतानार जाना पड़ता है। वहां पर मुखिया की बेटी का विवाह चल रहा था। उसी दौरान सुलक ने लांदा (शराब) का अधिक सेवन कर लिया था। जिसके कारण वह नशे में धुत्त हो जाता है। फल स्वरुप वहां पर काफी हंगामा मच जाता है। मुखिया तथा लड़की का दूल्हा सभी सुलक को मारते हैं। दूसरे दिन सुलक को होश आने पर वह वहां से भाग जाता है। उसे डर है कि कहीं नेतानार के लोग उसके गांव ना आ जाए।

महुआ और गाँव के सभी लोग उसे खोजते हैं। लेकिन वह नहीं मिलता है एक दिन गांव वालों को पता चलता है कि अंग्रेज सरकार ने उनकी जमीन वह खेत हथियाली है। गांववालों ने पंचायत कर वहां से विस्थापित होने के बजाय वे उन्होंने अंग्रेजों को ही खदेड़ने के लिए कमर कस ली। गढ़ बंगाल में अंग्रेजों के खिलाफ औरतों की सेना भी तैयार की जाती है। जिसका नेतृत्व महुआ करती है। दूसरी तरफ दंतेवाड़ा की सेवा का नेतृत्व सुलक कर रहा था। अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह करना है, इस सोच के साथ हर कोई अपने-अपने स्तर पर शस्त्रों को तैयार कर रहे था। आदिवासी जाल बिछाकर अंग्रेजों पर हमला बोल देते हैं। उस वक्त आदिवासियों की संख्या अधिक देख अंग्रेज सकते में आ जाते हैं। और रात के अंधेरे में सोए हुए आदिवासियों पर गोलियों से हमला कर देते हैं।

जिसके कारण आदिवासियों की लगी हुई छावनी में भगदड़ मच जाती है। अंग्रेजों ने कई लोगों को पर गोलियों से छलनी कर दिया था। कई लोग उस हमले में मारे जाते हैं। झालर सिंह भी उसी हमले में मर जाता है। सुलकसाए और महुआ वहां से भाग निकलने में सफल हो जाते हैं। महुआ और सुलकसाए के हृदय में वह दिन अविस्मरणीय घटना बनकर रह जाती है। वर्तमान समय में अंग्रेजों के खिलाफ की गई इस आंदोलन को याद किया जाता है।

प्रस्तुत उपन्यास में ऐसे आदिवासियों का चित्रण है जो अपने हक के लिए लड़ना जानते हैं। आदिवासियों की जीवन संघर्ष तथा घोटुल समुदाय की परंपराओं को लेखक ने बड़ी सत्यता के साथ प्रस्तुत किया है। उपन्यास मध्य प्रदेश के बस्तर और वहां के आदिवासियों के पृष्ठभूमि पर आधारित है। उपन्यास में बस्तर में स्थित घोटुलों समुदाय के भूमिकाल का विद्रोह का पूरा संगठन स्थित था। यह उपन्यास सच्ची घटना पर आधारित है। कुछ पात्र भले ही काल्पनिक हो परंतु पंडा, बैजनाथ, मुख्य नेतागण, राजपरिवार के व्यक्तियों को जस का तस रखा गया है।

सागर लहरे मनुष्य

उदय शंकर भट्ट कृत संस्करण 1964 प्रकाशक रामलाल पूरी आत्माराम एंड सन दिल्ली इस उपन्यास में मुंबई के पश्चिमी तट पर बसे हुए मछुआरों की कथा वर्णित की गई है। रूढ़िवादी तथा परंपरावादी होने के कारण जीवन में मछुआरों को बहुत कुछ सहना पड़ता है। उपन्यास में बताया गया है कि मंगलवार का दिन था मछुआरे अपने-अपने परिवार के लिए मछलियां पकड़ने गए थे। उसमें किसी बूढ़े का बाप का बेटा था। किसी का पति तो किसी का भाई। तो किसी के पिता थे। समुद्र में अचानक से तूफान उठा और सभी इस तूफान में फंस गये। सभी अपने-अपने लोगों का इंतजार करने लगे। इन मछुआरों के लिए वह दिन कालें दिन के समान था। कई परिवार के सदस्य तूफान से बच जाते हैं, तो कुछ को तूफान निकल जाता है।

उपन्यास के प्रमुख नायिका रत्ना है जो विट्ठल और बंसी की बेटी है। समृद्ध परिवार में पली-बड़ी रत्ना अपने जीवन को एक ऊंचाई तक पहुंचाना चाहती है। एक दिन उसकी मुलाकात मणिक से होती है। मणिक की बातों में आकर वह अपने परिवार के विरुद्ध मणिक से मिलती है। माणिक रत्ना पर अपनी अच्छी छाप बनाने के लिए उसे बड़े-बड़े होटलों में खाना- खिलाना, सिनेमाघरों में ले जाना, फिल्मी सितारों की तरह बातें करना। यह सब करने लगा। रत्ना इसी चकाचौंध की दुनिया में खो गई। उसे लगा मानो यही दुनिया सही है। मित्र यशवंत को गवार

समझने लगी उसे अपनी वास्तविक दुनिया क्रूर लगने लगी और मुंबई की चकाचौंध की स्वप्न नगरी उसे आकर्षित करने लगती है। अंतत: रत्ना मणिक से विवाह कर लेती है। विवाह पश्चात उसे ज्ञात होता है कि जो दुनिया मणिक उसे दिखता था वह दुनिया स्वप्न लोक थी। विवाह के बाद मणिक उसे चाल में रखता है। उसके पास कमाई के भी साधन नहीं है । जिंदगी के शुरुआती दिनों में वह रत्ना को झूठ बोलता रहा। । लेकिन यह झूठ की दीवार भी एक दिन ढह गई और रत्ना का स्वप्न टूट गया। पैसे कमाने के लिए वह होटल खोल लेता है, वहां भी रत्ना को ही काउंटर पर बैठना पड़ता है। रत्ना के कारण ही होटल में लोगों की आवाजाही बढ़ जाती है।

रत्ना को जब एहसास हुआ कि उस पर लोगों की नजर सही नहीं है तब वह मणिक को सब कुछ बताती है। बावजूद इसके मणिक उसे जबरन काउंटर पर बैठने के लिए बाध्य करता है। क्योंकि उसे कोई फर्क नहीं पड़ता उसे केवल पैसों से मतलब था। माणिक का यह रवैया देखकर इतना बरसोवा लौट आती है। रत्ना के पिताजी उसका विवाह फिर से यशवंत से करना चाहते हैं, किंतु मणिक एक दिन रत्ना को मना कर पुनः ले जाता है। मणिक के साथ जाने के बाद भी मणिक के व्यवहार में कोई बदलाव नहीं आता है। वह मणिक को छोड़कर अपनी सहेली सारिका के पास चली आती है। सारिका उसे एक किराए का मकान दिलाती है। जहां उसकी मुलाकात एक फरेबी व्यक्ति से होती है जो कि पेशे से वकील था। रत्ना पुनः प्रेम में पड़ती है उसे वकील से भी केवल फरेब झूठ और अत्याचार के अलावा कुछ नहीं मिलता। रत्ना उसे सबक सिखाती है और स्वयं भी सबक सीख कर वहां से चली जाती है।

इस बार वह कहीं नहीं जाती। कई जगह में नौकरी की तलाश करते-करते उसे एक अस्पताल में नौकरी मिल जाती है जहां बहुत कम समय में नर्स के सारे काम बहुत जल्दी सीख लेती है। एक दिन इसी अस्पताल में वंशी अपने आंख दिखाने विट्ठल और यशवंत के साथ आती है। रत्ना चाह कर भी अपनी मां के सामने अपनी पहचान नहीं बताती। रत्ना के वियोग में ही वंशी अपनी आंखों को देती है। डॉक्टर पांडुरंग को जब इसके बारे में पता लगता है तब वह मन ही मन सोच लेता है कि उसे वंशी और रत्ना को मिलाना है। सुनैना के माध्यम से रत्ना के बारे में वह सारी जानकारी पता कर लेता है। पंचगनी के अस्पताल में वह रत्ना का नाम लिखवाता है। और वंशी को पत्र लिख देता है कि वह नानी बनने वाली है। डॉक्टर रत्ना और उसके बच्चे को अपना लेता है।

इस प्रकार पूरे उपन्यास के केंद्र में रत्ना है संपूर्ण कथा उसी के इर्द-गिर्द ही घूमती है। माणिक रत्ना के जीवन में एक अभिशाप के रूप में आता है। जिसके कारण रत्ना को यशवंत का प्रेम गंवारूँपन लागने लगता है।

लेखक उपन्यास के माध्यम से इस ओर भी इशारा करते है कि समाज सिर्फ माणिक और गुजराती वकीलों जैसे व्यक्तियों से ही नहीं भरा है। जो केवल इंसान की मजबूरी का नाजायज फायदा उठाएं बल्कि कुछ ऐसे लोग भी हैं जिसके हृदय में निश्छल तथा निस्वार्थ प्रेम भी है जो कि डॉक्टर के रूप में रत्ना को प्राप्त होता है। उपन्यास का प्रारंभ जिस प्रकार से तूफान में फंसे हुए लोगों से हुआ। जिसके द्वारा मन में एक डर का ज्वार उत्पन्न होता है उसी प्रकार लेखक ने इस ज्वार का अंत रत्ना और डॉक्टर पांडुरंग के मिलन से शांत कराया है।

रथ के पहिए

1952 में देवेंद्र सत्यार्थी के द्वारा लिखा गया रथ के पहिए उपन्यास में आदिवासी जीवन के लोक संस्कृति तथा लोक चेतना का स्पंदन है। लेखक के यायावर प्रवृत्ति को उनकी रचना के माध्यम से अनुभव तथा एहसास को महसूस किया जा सकता है। इस उपन्यास में जीवन के क्रमिक विकास को रथ के पहिए की भांति बताया गया है। जिस प्रकार रथ का पहिया निरंतर चलता है उसी प्रकार हमारा जीवन भी गतिशील है। रचनाकार ने उपन्यास में उन तमाम पात्रों को बड़े ही रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है। चाहे वह गरीब, मजदूर हो या फिर सामंत या फिर ठेकेदार ही क्यों ना हो। बड़ी ही बारीकी से लेखक ने आदिवासी जीवन को एक अलग प्रकार की जमीनी हकीकत प्रदान की है।

उपन्यास में करंजिया गांव के आदिवासियों की जीवन संघर्ष का चित्रण है। विज्ञान की इस दुनिया में आदिवासी आज भी सहज और सरल जीवन जी रहे हैं। लेखक ने भी अपने प्रवृत्तिनुसार इनके लोक-त्योहार तथा लोक-जीवन का सजीव चित्रण खींचा है। गोंड जाति के कठिन जीवन यात्रा को रथ के पहिए की भांति निरंतर घूम रहा है। “रथ के पहिए के नाम का प्रतिकार्थ ही इसके उद्देश्य की ओर संकेत करता है। मानक की प्रगति-यात्रा मानव सभ्यता के निरंतर विकास की प्रक्रिया और प्रगति तथा विकास की आबाध प्रवाहमानता को ही रथ के पहिए ध्वनित करते हैं।”10

रथ के पहिए उपन्यास में मूलत दो सभ्यताओं को अंकित किया गया है। एक तो आदिवासियों की सभ्यता और भौतिकवादी सभ्यता। करंजिया गांव के शिक्षित आनंद तथा सोम दोनों ही गांव में बदलाव लाना चाहते हैं। कुछ हद तक वे सफल भी होते हैं। आनंद का विवाह गांव की मुखिया की लड़की के साथ संपन्न होता है और और वह जीवन के विकास यात्रा की ओर आगे बढ़ जाते हैं। उपन्यास में आदर्शवादी दृष्टि को प्रमुखता दी गई है आनंद का कला भारती नामक आश्रम का आरंभ करना ताकि वहां के रहिवासियों को शिक्षित किया जा सके। सोम और फुलमत दोनों ही विवाह बंधन में बंधते हैं, और करंजिया में रहकर वहां के लोगों की सेवा करना स्वीकारते हैं। वहीं रूपी, आनंद और चुन्नू मियां जीवन की गतिशीलता प्रदान करने के लिए आगे की यात्रा पर निकल पड़ते हैं

वन के मन में

1962 में योगेंद्र सिंह कृत उपन्यास है। जिसमें आदिवासी समाज की प्रकृति प्रति प्रेम और समर्पण तथा सामान्य मानवीय प्रवृत्ति को बड़े ही सहजता से दर्शाया गया है। लेखक के शब्दों में “वन की शांति में संगीत है वन्य आदिवासियों के अल्प शाब्दिक कोष के पीछे भी वे भावनाएं ही हिलोरा लेती है प्रेम की, ईर्ष्या की, आदर्श की जिन पर विश्व का महान साहित्य निर्मित है। वन की चंचल संगीतमयी सरिताएं, आनंद से झूम रहे वृक्ष-समूह, वन की गहन सुषुप्त शांति, वर्षा ऋतु में पहाड़ों की वह नीलिमा, जिससे कवि का भावुक मन स्तुति में उभर आता है। और जिस पराजित नीला आकाश के देवतागण ईर्ष्या से प्रेरित हो धवल- मेघों को उतार देते हैं कि नील पहाड़ियों की असह्य सुंदरता छिप जाए।”11 उपन्यास का मुख्य पात्र लोकना हो जनजाति समाज से जुड़ा हुआ है। पूरी कथा उसी के आसपास चल रही है। लोकना कर्तव्यपरायण मेंजो के प्रेम के प्रति समर्पित है। कला प्रेमी लोकना अपने बांसुरी बजाने की कला से सभी को मोहित करता है। जिनकी भी लोकना को पसंद करती है। जिसकी वजह से वह मेंजो को ना पसंद करती है। बिहार के हो जनजाति में दहेज की प्रथा है। जिस लड़के के द्वारा लड़की को दी जाती है। जिसे गौना देना कहते हैं। लोकना जब अपने परिवार को मेंजो और अपने रिश्ते के के बारे में बताता है, तब उसके परिवार को लगता है कि वह गोना देने से बच जाएंगे लेकिन जब लोकना के परिवार मेंजो के परिवार के पास रिश्ता लेकर जाते हैं, तब मेंजो के परिवार ने गौना की बहुत अधिक मांग की। लेखक के शब्दों में "दोनों परिवारों के आमने-सामने बैठकर गोनो तय करने तय करने की मोल भाव प्रक्रिया 15 बैल और ₹500 से शुरू होकर आठ बैल

तथा ₹300 पर आकर अटक गई"।12 लुकना मेंजो के प्रति समर्पित था इसलिए वह मेंजो से विवाह करने के लिए दिन-रात कड़ी मेहनत करने लगा। काम में तल्लीन लोकना बांसुरी को भी भूल सा गया था।

कठिन परिश्रम से वह गौना की रकम एकत्र करता है। "मेंजो के पिता, लोकना के पिता के पास उसके गांव आते हैं। तमाम शकुन- अपशकुनों पर विचार करने के उपरांत हिसाब-किताब लगाकर देखा गया कि शकुन अधिक है। अतः विवाह किया जा सकता है। यह शुभ सूचना लेकर दोनों के घर परिवार के एक-एक आदमी उनके कैंप पहुंचते हैं। और उन्हें शुभ समाचार सुनाते हैं। अंत में मेंजो लोकना से फिर एक बार बांसुरी बजाने को कहती है। जिसके प्रत्युत्तर में लुकना कहता है कि अब तुम ही मेरी बांसुरी हो मेंजो"।13 प्रस्तुत उपन्यास में लुकना एक आदर्श प्रेम को प्रस्तुत करता है जिसमें कठिन परिश्रम के साथ-साथ ईमानदारी का भाव भी झलकता है। "हो आदिवासी जीवन को केंद्र में रहकर लिखा गया यह उपन्यास बिहार के आदिवासी संस्कृति का घोतक है इतना ही नहीं यह भारत की भारतवर्ष की आदिवासी संस्कृति को प्रदर्शित करता है।"14 संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि वन के मन में उपन्यास आदिवासियों के जीवन संघर्ष के साथ-साथ भावात्मक धरातल की सच्ची तस्वीर है

काला पादरी (तेजिंदर सिंह)

काला पादरी उपन्यास 21वीं सदी की अप्रतिम रचना है। काला पादरी उपन्यास सदियों से चली आ रही सामाजिक अव्यवस्था पर बहुत बड़ा प्रश्न है। लेखक ने उपन्यास के माध्यम से ऐसी समस्या को उठाया है जिसे पढ़ने के बाद व्यक्ति गहन चिंतन में डूब जाता है। उपन्यास में गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी के साथ- साथ धर्मांतरण की समस्या सबसे बड़ी है।
उपन्यास के कथा नायक जेम्स खाका हैं, जो कि धर्म, जाति, समाज से ऊपर उठकर मानवता को श्रेष्ठ मानता है। वहीं दूसरी तरफ जेम्स की मां धर्म, जाति के बंधनों से बंधी हुई है, और वो चाहती है कि उनकी आने वाली सभी पीढ़ी चर्च की सेवा में लग जाए, किंतु जेम खाका बिसपस्वामी की नीतियों और मंशा से अवगत है इसलिए धर्म के नाम पर होने वाले आडंबर का विरोध करता है, वह बिसपस्वामी जैसे धर्म के ठेकेदारों के स्वार्थ को जानता है।

उपन्यास में जेम्स खाका और सोंजेलीन मिंज के प्रेम को भी पूरी शुद्धता से बताया गया। जेम्स खाका धर्म की प्रकांडता को उस समय स्वीकार नहीं करता है जब उसे सोंजेलीन मींज से मिलना

होता है वह मानता हैं कि व्यक्ति को स्वतंत्र रूप से अपना जीवन जीना चाहिए उसे उतनी स्वतंत्रता तो मिलनी ही चाहिए जिसका वह अधिकारी है।

उपन्यास में भुखमरी का सामना करते उरांव जनजातियों के पास धर्मांतरण के अलावा और कोई विकल्प नहीं है क्योंकि मिशनरियां उन्हें ही मदद करती है जो ईसाई हैं, एक तरफ भूखमरी, दूसरी तरफ लाचारी इन हालातों को देखते हुए लेखक ने जेम्स खाका के माध्यम से ज्वलंत प्रश्न हमारे सामने रखा है कि भूख और गरीबी हमेशा आदिवासी और दलित की ही क्यों होती हैं? उपन्यास में मध्यप्रदेश के उरांव जनजातियों के अंतर्मन की पीड़ा तथा धर्म को लेकर चल रहे धोखाधड़ी और अंधविश्वास को पाठकों के सामने रखा गया है।

पठार पर कोहरा -राकेश कुमार सिंह

राकेश कुमार सिंह द्वारा रचित उपन्यास 'पठार पर कोहरा' झारखंड के मुंडा जनजातीय समाज का चित्रण है, जिसके अंतर्गत आदिवासी तथा दिकू (गैर आदिवासी) के प्रति पूर्वाग्रह को बताया गया है कि हमेशा दिकू आदिवासी समाज का बुरा ही चाहेंगे या फिर उनकी जमीन को हथियाने आए हैं। उनको जंगल से खदेड़ने की मंशा लिए वे आपके बीच है, ऐसा नहीं है। कई बार ऐसा भी होता है कि दिकू सोचता है कि आदिवासी समाज को भी वही मान-सम्मान मिले जिसके वे अधिकारी हैं। इस नियत से वह आदिवासी के बीच है।

उपन्यास की कथा को 5 भाग में बाँटा गया है। प्रथम है - जंगल यहाँ से शुरू होता है। दूसरा खंड है - ठहरिए आगे जंगल है। तृतीय है - कोहरे में अकेले। चौथा है - कोहरे के विरुद्ध। अंतिम, पांचवां है - यह अंत नहीं।

कथा के नायक संजीव सान्याल ईमानदार, कर्मठ, समाज के प्रति सजग व्यक्ति है। रांची के उपनगर के तुपुदाना में प्राथमिक विद्यालय में शिक्षक के रूप में कार्यरत हैं। समाज के प्रति अपने दायित्व को समझते हुए शिक्षा जगत में भ्रष्टाचार में लिप्त जिला शिक्षा अधिकारी निरंजनदास को रिश्वत लेते हुये रंगे हाथ पकड़ते हैं, और उसे कानून के हवाले कर सजा दिलाते हैं। अपनी सजगता और जमाखोरी का भंडाफोड़ करने वाले तथा भ्रष्टाचार के विरोधी संजीव का संघर्ष यही खत्म नहीं होता है। उपन्यासकार के शब्दों में “संजीव जिनकी आँख की किरकिरी थे। जिनके कलेजे में चुभा काँटा थे, जिनके लिए खतरनाक साबित होते, उन्होंने संजीव को शहर

से बहुत दूर गहरे जंगल में तड़ीपार कर दिया।[15] संजीव का तबादला जंगल के स्कूल में कर दिया जाता है। दो वर्षों तक कार्य करने के पश्चात स्पीड परियोजना के योग्य पाकर संजीव को बरकाना के गजलीठोरी वन में ट्रान्सफर कर दिया जाता है। जहां पर शिक्षा का नाम तो है कागजों पर, लेकिन शाला के नाम पर कुछ नहीं है। यहाँ तक की जमीन भी नहीं।

संजीव के गजलीठोरी पहुँचने से पहले उसका नाम पहुँच जाता है, एक दिकू के रूप में, जो डाकू है और कोमोनिस्ट। वो भी ऐसा जो की बाघ से भी ज्यादा खतरनाक है। जंगल की सेना में ये बात फैला रही है। वहाँ का सबसे स्वार्थी गगन बिहारी साहू जो कि मजबूर व्यक्तियों का गैर फायदा उठाता है, वह लोगों से कहता है कि "बाघ, भालू, गिद्ध, कौए और सियार से भी ज्यादा खतरनाक होता है दिकू और दिकुओं में भी सबसे जहरीला होता है कौमनिस्ट"।16 साहू की बातें सुन कर सभी चिंता में पड़ जाते हैं। उनके सामने गरीबी लाचारी एक समस्या तो खड़ी ही है अब ये कौन सी नई समस्या आने वाली है। वे डर रहे हैं अपने जंगल और जमीन के लिए।

संजीव बरकाकाना से तुपकाडीह स्टेशन उतरता है। घने कोहरे में मि. परेरा गजली ठोरी के बारे में विस्तार से बताकर संजीव को वहीं छोड़कर चले जाते हैं। संजीव भी नहीं समझ पाता है कि अब वो इस घने कोहरे में जाए तो अब कहां जाए। कई जगह आश्रय मांगने पर उसे आश्रय नहीं मिल पाता है। कुछ दूरी पर उसे एक झोपड़ी दिखाई पड़ती है। वह झोपड़ी के पास जाता है और रात बिताने के लिए मिन्नतें करता है। वह झोपड़ी है एक औरत की, जिसका नाम रंगेनी है वह अपने बेटे से कहती हैं कि बकरियन की कोठारी में उसे जगह दे दें। किसी भी तरह से उसकी रात बीत जाती है। जब सुबह होती है, तो वह देखता है कि जिस स्कूल का नाम बताया गया है, वह स्कूल तो यहां पर है ही नहीं। संजीव की मुलाकात पंसारी की दुकान चलाने वाले साहू से होती है जिससे यह पता चलता है कि स्कूल का नाम केवल कागजों पर है। वास्तव में स्कूल है ही नहीं।

संजीव वहां के हालात देखकर समझ जाता है कि यह लड़ाई छोटी नहीं है, बहुत बड़ी है। किसी भी तरह पहले यहाँ उसे कुछ दिन ऐसे ही बिताने पड़ेंगे। संजीव के पास रहने का ठिकाना न होने के कारण वह रंगेनी के बेटे सोनारा से दोस्ती करता है और उसी के पास रहता है। रंगेनी ने साहू के मुंह से सुनी थी कि आने वाला मास्टर बहुत बड़ा कौमनिस्ट है इसलिए वह डरी सहमी सी रहती है और बार-बार अपने बेटे सोनारा से कहलवाती है कि वह यह घर छोड़कर दूसरा

ठिकाना ढूंढ ले, लेकिन संजीव की पास दूसरा आसरा न होने के कारण वह वहीं पर रहता है, और सोनारा से दोस्ती कर उसे पढ़ाता है।

रंगेनी कथा की प्रमुख पात्र हैं। रंगेनी का पति होकना ज्यादा होशियार और समझदार होने के कारण गांव के बड़े-बड़े लोगों को अपने काम से मोह लेता है। होकना बड़े से बड़ा काम भी आसानी से कर लेता है। वह जहां काम करता था, वहां उसकी दोस्ती सुरजा से होती है। सुरजा बड़ा ही बिगड़ैल किस्म का इंसान था, लेकिन सुरजा से दोस्ती होने के कारण बेचू तिवारी होकना को जंगल में अस्थाई नौकरी दे देता है। उसी समय वह रंगेनी से ब्याह कर लेता है। रंगेनी अत्यंत सुंदर थी। जब सुरजा रंगेनी को देखता है, तो उसकी नियत खराब हो जाती है और काम आवेश में आकर वह होकना को मार देता है। किसी ने सही कहा है कि अगर औरत का पति या पिता उसके साथ ना हो तो यह स्थिति व्यक्ति के सिर पर छत न के बराबर की होती है। ऐसी ही दशा रंगेनी की हो जाती है। रंगेनी को अकेला समझ सभी उसका फायदा उठाते हैं। वह अपना गुजर बसर करने के लिए सब्जी बेचने का काम करती है। दुनिया के रक्षक कहलाने वाले पुलिस भी उसे अकेला पाकर अंधेरे में उसके साथ बलात्कार करते हैं। इतना ही नहीं एक औघड़ आदमी भी उसके साथ बलात्कार करता है। कुछ दिनों बाद जब रंगेनी को पता चलता है कि वह गर्भवती है तब वह घोर संकट में पड़ जाती है।

अब उसे कौन सहारा देगा गांव के पंचायत भी पूछते हैं कि पेट में पल रहा बच्चा किसका है? वह बेचारी खुद भी नहीं जानती है कि जिसका बच्चा वह अपने पेट में लिए हैं, वह किसका है? उस दुष्ट पुलिस का जिसने अंधेरे का फायदा उठाकर उसकी अस्मिता को लूट लिया या वह औघड़ आदमी जिसने बेटी की उम्र की लड़की के साथ में बलात्कार किया। पंचायत उसके सामने कई सवाल खड़े कर देती है। पंचायत के सामने वह निरुत्तर रहती है। पंचायत को लगता है कि रंगेनी अब गलत कार्यों में लिप्त हो गई है, इसलिए उसका हुक्का पानी बंद कर दिया जाता है। रंगेनी भी स्वाभिमान के साथ गांव छोड़कर दूसरी जगह जाकर बस जाती है। वहां जाने के पश्चात वह सोचती है कि बच्चे के जन्म होने के बाद उसे हवा पानी धूप इन सारी चीजों से बचाना होगा। उसकी रखवाली के लिए एक मजबूत झोपड़ी की आवश्यकता रहेगी वह निस्सहाय अकेली पड़ जाती है। एक अच्छी झोपड़ी बनाने के लिए उसे बांस चाहिए और बढ़िया बांस बनासकांठा में ही मिलते हैं। अत: वह दोपहर में बनासकांठा पहुंच जाती है, जहां पर उसकी मुलाक़ात बकुली बुढ़िया से होती है।

जीने का सलीका सिखाते हुए उसे कहती है कि “गुन सीख, ताकत जुमा, हमारी तरह! विद्या सीख, मजबूत बन रे! नई तो रांड, औरत की जिनगी सांड के खुर के नीचे दबी घास जैसी हो जाती है, दबेगी, पिराएगी, सुकेगी और अंत में भूसी बनकर उड़ जाएगी।”17 उसकी बातें सुनकर रंगेनी सोचती है कि बात सही है इसलिए वह अपने आप को उस बकुली बुढ़िया की चेली बना लेती है। जबसे बकुली बुढ़िया के साथ रंगेनी रहने लगती है, तब से गांव वाले भी उसे ताना नहीं मारते और गांव के साहू और बेचू तिवारी जैसे लोग भी कुछ बोलने से कतराते हैं।

रंगेनी एक बेटे को जन्म देती है जिसका नाम सोनारा है। सोनारा और संजीव की दोस्ती जब रंगेनी देखती है तो वह सोचने के लिए मजबूर हो जाती है कि जिस व्यक्ति के बारे में साहू और तिवारी कहते हैं “शंखचूड़ से भी ज्यादा ज़हर है, कोमोनिस में पर अभी जो कुछ बोला कोमोनिस, उसमें तो कोई जहर नहीं दिखता! कुछ गलत भी तो नहीं बोला कोमोनिस। होगा खराब आदमी, पर जो आदमी-औरतों की मान-मरजाद मान के लिए सोचें घर की मेहरारूओं की इज्जत की फिकीर रखें वह बहुत खराब आदमी कैसे हो सकता है?”18 संजीव जब साहू से बात करता है, तब अपने प्रति उसके विचार को जानने के पश्चात संजीव को आश्चर्य होता है, कि आखिर में मेरे प्रति इस तरह का विष जंगल में किसने घोला है? खोज करने पर पता चलता है, कि जंगल सेना ने साहू को संजीव के बारे में इस तरह की जानकारी दी। साहू कहता है कि “जंगल में हर आने-जाने वाले के जन्म मरण का लेखा रखना पड़ता है, मास्टर जी।” 19

उसकी बातों में कहीं ना कहीं संजीव को धमकी महसूस होती है और वह कहता भी है “कि देखो मास्टर गजली में रहना है तो सीधे-सीधे ही रहना, यहां कोई जागरण फागरण नहीं चलेगा, यहाँ तो जंगल का ही नियम चलता है।”20. उसे धमकी भी देता है कि महीने के अंतिम तारीख तक जंगल सेना को उसे पैसे भेजने पड़ेंगे वरना तुम्हारा रहना यहां मुश्किल हो जाएगा। संजीव सीधे-सीधे उसे मना कर देता है। बेचू तिवारी और साहू किसी न किसी रूप में हमेशा उसे धमकाते रहते हैं, लेकिन संजीव भी निश्चय कर लेता है की गजलीठोरी में अपने विद्यालय की संकल्पना को पूरा करके ही रहेगा।

वह समझ जाता है कि गांव की सबसे बड़ी समस्या है साहू का कर्जा और बेचू तिवारी का दबदबा इन दोनों ही चीजों से यदि मुंडा समाज को मुक्त किया जाए तो इनका भला हो सकता

है, इसलिए गांव की दो महत्वपूर्ण व्यक्ति हरमू और सुगना को अपनी ओर कर लेता है, हालांकि हरमू और सुगना पर भी साहू का कर्जा लदा हुआ है।

साहू और बेचू तिवारी के यहां रंगेनी जब सौदा लेने के लिए जाती है, तब साहू उसे धमकाने लगता है। उसे कहता है कि "सुन कौमनिस्ट के पेट में दाढ़ी होती है, मीठा माहुर होता है कौमनिस्ट, उसके फेरे में कभी मत पड़ना जल्दी भगाना, उसे अपने घर से नहीं तो बाबा गउँवाँ और जंगलसेना के बीच पिसाकर सतुआ हो जाएगी जाँत में मकई की तरह, समझती है न भगतिन?"[21] रंगेनी समझ जाती है कि इसमें साहू और बेचू तिवारी की चाल है, इसलिए वह संजीव को सोनारा के द्वारा कहलवाती है कि वह यहाँ से न जाए।

संजीव गाँव की गरीबी संघर्ष और भ्रष्ट व्यवस्था को दूर करने का संकल्प लेता है। इस कड़ी में वह अपने मित्र अनंत चौधरी की मदद से को-ओपरेटिव सोसायटी की स्थापना करवाता है, ताकि गजलीठोरी के लोग इसकी मदद से कुछ कर सके। उसके पश्चात वह सुगना मुंडा और बकुली बुढ़िया को साहू के कर्ज से मुक्त करवाता है। करमा के त्योहार तक तो विद्यालय भी पूरा होने की आशा है। जहां पर कानून और नियम क्या होता है वहाँ अब पायलट प्रोजेक्ट के अनियमितताओ के लिए जाँच समिति का गठन किया जाता है।

संजीव की संकल्पना पूरी होती देख साहू और बेचू तिवारी से बर्दाश्त नहीं होता है, वे उसे मारने की धमकी दे जाते हैं। संजीव उनकी धमकियों को नजरंदाज करता है। परिणामत: वे रात के अंधेरे में उसका गला रेत कर मार देते हैं।

कथा के अंत में भले ही बेचू तिवारी जैसे लोगों को लगता है कि उन्होंने संजीव को मार कर उसके विरुद्ध उठने वाले आवाज़ को रोक दिया तो ऐसे लोग गलत सोचते हैं, क्योकि प्रगति के पथ पर जो दीया संजीव ने जला दिया है, वह अब कोई नहीं रोक पाएगा।

संजीव गजलीठोरी में रह रहे लोगों की सोई हुई चेतना का बोध कराने का प्रयास करता है। कुछ हद तक वह उसमें सफल भी होता है। उपन्यास के माध्यम से लेखक ने दिकु और आदिवासी के बीच जो पूर्वाग्रह है उसे कुछ पाटने का प्रयास किया है।

साथ ही यह भी बताया हैं कि गजलीठोरी पर गगनबिहारी साहू, बनिए तथा बेचू तिवारी जैसे गैर आदिवासी राज करना चाहते हैं। यही कारण है कि ये मुंडा समाज का जीवन स्तर उठ नहीं पाता है।

पिछले पन्ने की औरत- शरद सिंह

शरद सिंह कृत इस उपन्यास में आदिवासी औरतों के जीवन का यथार्थ प्रस्तुत किया गया है। यह जनजातियां बेड़नी या आर्थिक विपन्नता के कारण नाच कर कुछ कमा लेती हैं। नाच के दौरान यदि कोई व्यक्ति उससे संबंध बनाना चाहे तो वे उसके साथ चली जाती हैं। इसे सिर ढकना कहते हैं। जब तक चाहे पैसा देकर उसे से संबंध बना सकता है। लेकिन जब चाहे छोड़ भी सकता है। इनके बच्चों के पिता का नाम नहीं मिलता। इस समाज का पुरुष कामचोर होता है। पूरी तरह औरतों की कमाई पर निर्भर। इसमें पुत्री का जन्म वरदान माना जाता है, क्योंकि बड़ी होकर वह कमाई का साधन बनेगी। मध्य प्रदेश के इस आदिवासी समाज की बेड़नीयों के साथ संबंध पर जमीदार परिवार की औरतें भी बुरा नहीं मानती। यथार्थ की भूमि पर लिखा यह उपन्यास आदिवासी औरतों के जीवन का दस्तावेज है जो आखिरी पन्ने की औरत बन कर रह गई है।

धुणी तपे तीर- हरिराम मीणा

इस उपन्यास में दक्षिणी राजस्थान के आदिवासियों का ब्रिटिश शासन के विरुद्ध विद्रोह को चित्रित किया गया है, जो कि सत्य घटना पर आधरित है। यह उपन्यास एक ऐतिहासिक दस्तावेज़ को बयां करता हैं। जिसे उतने तवज्जो नहीं मिली जितनी कि मिलनी चाहिए। यह घटना जालियावाला बाग हत्याकाण्ड से कम नहीं, फिर भी यह सच शायद ही किसी का पता हो। शहीद आदिवासियों का सत्य समाज के सामने उजागर हो। इसका प्रयास हरिराम मीणा ने अपने उपन्यास के माध्यम किया है। उपन्यास में दक्षिणी राजस्थान का चित्रण किया गया है।

इसमें बताया गया है कि शुरुवाती दौर में सामंतों का हस्तक्षेप जनजातीय समाज में लगातार बढ़ता जा रहा था। आदिवासियों को इससे किसी तरह की विद्रोह करने की नौबत नहीं आयी थी। लेकिन जैसे-जैसे सामंतों और ब्रिटिश का गठजोड़ मजबूत होने लगा। वैसे-वैसे आदिवासियों के समक्ष आए दिन कोई-न-कोई समस्या उत्पन्न हो जाती। आदिवासियों पर

अत्याचार और शोषण बढ़ने शुरू हो गए। उनके जंगल और जमीन पर अपनी बुरी नजर गाड़ने लग गए। यहां तक पारंपरिक कार्यों तथा मालिकाना अधिकार पर उनका हस्तक्षेप शुरू हो गया। इससे आदिवासियों में असंतोष उत्पन्न हुआ। अत: आदिवासियों ने इस बढ़ते हुये उपद्रव के विरुद्ध एक कोर की स्थापना की।

इससे आदिवासियों को बहुत बड़ा समर्थन मिला और वे विद्रोह पर उतर आए। उपन्यास की कहानी अपने चरम पर तब पहुंचता है जब उपन्यास के नायक पूंजा के साथ मिलकर संप की स्थापना करते हैं। इसकी सहायता से अन्याय और अत्याचार के खिलाफ मुहिम शुरू की जाती है। साथ ही ब्रिटिश शासकों के विरुद्ध विद्रोह। आदिवासियों में जनजागृति का कार्य शुरू होता है, ताकि अधिक से अधिक लोग अपने अधिकार के प्रति सजग रहें। बढ़ते हुए विद्रोह को देखते हुये ब्रिटिश शासक बौखला गयी और उन्होंने 1913 में मानगढ़ पर आर-पार की लड़ाई शुरू कर दी। गोविंद गुरु के आह्वान पर लगभग 25,000 आदिवासी वहाँ एकत्रित हो गए। अंग्रेजों ने नृशसंता पूर्ण लोगों की हत्या कर दी। इस लड़ाई में लगभग 1500 आदिवासी शहीद हुए और गोविंद गुरु सहित बचे हुये आदिवासियों को गिरफ्तार कर लिया गया।

उपन्यास पढ़ने के बाद ही ज्ञात होता है कि जालियावाला बाग हत्याकांड से भी क्रूर हत्या इन आदिवासियों की हुई है। जिसका इतिहास में केवल उल्लेख मात्र है जो शहादत और सम्मान इन्हें मिलनी चाहिए वो इन्हें नहीं मिली। लेखक ने इस सत्य घटना को अपने कल्पना और अनुभव के आधार पर समाज के सामने कौशलतापूर्ण रखा है। उपन्यास में और भी कई गौण पात्र हैं, जो कि कथा से जोड़े रखता है। जैसे कुरिया के अंर्तद्वंद्व का चित्रण जो कि पाठक को सजग रखता है। पुंजा और कमली का चरित्र भी उपन्यास से बांधे रखता है। उपन्यास में आदिवासियों की भावनावों के साथ-साथ प्रकृति भी परिवर्तित होती रहती है।

आदिवासी मूलक उपन्यासों में विभिन्न चेतना

राजनैतिक चेतना

किसी भी समाज की उन्नति या अवनति वहां की राजनीतिक व्यवस्था पर निर्भर करती है। वर्तमान में जो भी स्थिति जनजातियों की है। उसका अधिकांश जिम्मेदारी राजनीति को जाता है। आज भी यह समाज हासिये की जीवन जीने पर विवश है। बहुराष्ट्रीय कंपनियां, प्राशासन तथा

निजी कंपनियों के हस्तक्षेप के कारण जनजातीय समाज को कई आए दिन एक नई चुनौती का सामना करना पड़ता है। स्वार्थवश प्रशासन भी कंपनियों के पक्ष में रहती है और इसी राजनीतिकरण को साहित्यकारों ने पाठकों के सामने यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है।

उपन्यास 'पठार पर कोहरा' राकेश कुमार सिंह द्वारा रचित जनजातियों के शोषण और जन जागृति पर आधारित उपन्यास है। उपन्यास के बेचू तिवारी और साहू जैसे लोग किस प्रकार शिक्षा की राजनीति करतें हैं, इसका चित्रण किया गया है। उपन्यास के संदर्भ में मनोज ने अपने विचार व्यक्त किए है- “इसमें लेखक ने झारखंड की उरांव मुंडा जनजातियों का उच्च वर्ण व वर्ग राजनीतिक तंत्र व उसके कर्मचारी और अपराधियों के भ्रष्ट गठजोड़ द्वारा किए जा रहे, शोषण प्राकृतिक संपदा की खुली लूट, आदिवासी जीवन शैली में निहित पर्यावरणीय प्रेम और अन्याय के विरुद्ध विद्रोह की परंपरा के इतिहास को बयान करता है।”[22] पठार पर कोहराके बेचू तिवारी और साहू जैसे लोग जानते हैं कि यदि गजलीठोरी के लोग पढ़ लिख लेंगे तो इनकी धाक कम हो जाएगी और इनका नुकसान होगा, इसलिए यह प्रयास करते हैं कि गजलीठोरी में विद्यालय सिर्फ कागज पर रहे न कि वास्तविक में। गगन बिहारी साहू गांव में संजीव के विरुद्ध सभी को भड़का रहे हैं, वह कहते हैं रुदिया से कि "बाघ, भालू, गिद्ध, कौए और सियार से भी ज्यादा खतरनाक होता है दीकू और दीकूओं में भी सबसे जहरीला होता है कौमनिस्ट।"[23] इस प्रकार साहू और तिवारी जैसे लोग अपने स्वार्थ व शिक्षा की गंदी राजनीति चलते हैं।

काला पादरी’ तेजिंदर द्वारा लिखित जनजातीय समाज की करुण गाथा को चित्रित करता है। धार्मिक और राजनीतिक रूप से अपना स्वार्थ साधने वालों का काला चिट्ठा उपन्यास के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। भोले-भाले जनजातियों को यह इसाई मिशनरी किस तरह उनके हालात का फायदा उठाकर धर्मांतरण करवाते हैं। उपन्यास के पात्र फादर मैथ्यू कहते हैं कि “इनके आदिवासियों के पास ईश्वर का कोई इमेज नहीं था डियर। जिसकी ओर आंख भरी निगाह के साथ देख सके जब हम यहां आया तो राजा भी अपना देवी को प्लांट कर रहा था। यू नो, हाउ टू प्लांट ए थॉट? इट इज इंपोर्टेंट। हमने भी प्रभु यीशु की इमेज प्लांट कर दी। इट वाज ए फॉर ऑफ इमेजेज जिसमें जीत हमारी हुई।”24 इस तरह उपन्यास में जनजातीय समाज हिंदू और इसाई इन दोनों धर्मों की राजनीति में छटपटा कर रह जा रहा है। इस प्रकार लेखक ने धर्म के नाम पर हो रहे राजनीति का यथार्थ चित्रण किया है।

सामाजिक चेतना

जाति एवं वर्ण व्यवस्था

मानव सामाजिक प्राणी है। समाज में रहने के नाते उसे उसके अनुरूप अपने आपको गढ़ना होता है। समाज की प्रथम इकाई परिवार होती है। शिशु अपने परिवार से अधिकतर आचरण सीखता है लेकिन जैसे-जैसे वह बड़ा होता है, वैसे-वैसे घर के बाहर के तौर-तरीके वह सीखने लगता है। समाज सुचारु रुप से चल सके, इसके लिए उसकी कुछ अपनी व्यवस्था होती हैं। व्यक्ति उन व्यवस्थाओं तथा नियमों में ढलता जाता है। अलग-अलग बोलियां, भाषाएं, क्षेत्र, धर्म आदि भारत देश में है। उन्हीं के आधार पर जाति व्यवस्था है, ताकि समाज सामान्य तौर पर सुलभता से चल सके। प्राचीन काल से ही हमें भारत में विभिन्न जाति एवं धार्मिक तथा वर्ण व्यवस्था देखने मिलती है। इन्हीं व्यवस्थाओं पर मनुष्य निर्भर है। यहां तक कि भारत में जाति के अनुरूप व्यक्ति के व्यवसाय निश्चित किए जाते हैं। भारत में जाति प्रथा को लेकर संकीर्णता अधिक है। हालांकि आदिवासी समाज में जाति प्रथा न के बराबर है। गंगा सहाय मीणा के शब्दों में "आदिवासी समाज में हिंदुओं की तरह जाति नामक श्रेणीबद्धता और अश्पृश्यता नहीं है, लेकिन भारत के तमाम आदिवासियों का जीवन इससे प्रभावित अवश्य हुआ है।"[25]

पारिवारिक संबंध

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। उसे समूह में जीवन यापन करना पड़ता है, क्योंकि समूह से ही उसकी ताकत बनती है। परिवार ही समाज की पहली इकाई होती है। बच्चा अपने परिवार से सारे संस्कार सीखता है। वही उसके जीवन को संचालित करती है। इस संदर्भ में डॉ. महेंद्र कुमार मिश्रा का कथन है कि "सामाजिक विरासत में वह सब सम्मिलित है, जो मनुष्य समाज में रहकर सीखता है। परिवार तथा समाज में व्यवहार के तरीके सीखता है। बालक नंगा पैदा होता है, परिवार में उसे ढंग से वस्त्र आदि का प्रयोग करना सिखाया जाता है। बालक बोल नहीं सकता केवल रोता और हंसता है। परिवार में उसे भाषा का प्रयोग सिखाया जाता है। बालक भौतिक वस्तुओं और जीवधारियों में तथा एकवस्तु का दूसरी वस्तु से अंतर नहीं समझ सकता। परिवार में उसको सब सिखाया जाता है"।[26]

विवाह प्रथा

जनजातीय समाज में विभिन्न वैवाहिक प्रथा का प्रचलन है। जैसे बहुपतित्व विवाह, बहूपत्नीत्व विवाह तथा एकल विवाह प्रथा। अधिकतर जनजातियों में एकल विवाह का प्रचलन है। खासी संथाल हो तथा कादर आदि जनजातियों में एकल विवाह की प्रथा का प्रचलन है। जनजाति में विवाह के समय में दहेज का भी चलन है। जिसमें कन्या पक्ष को वर पक्ष वालों को

दहेज देना पड़ता है। जिसके कारण कई बार इन जनजातियों में लड़की का विवाह होने में काफी समय लग जाता है। उसी प्रकार बहुविवाह प्रथा में एक पत्नी के साथ एक से अधिक पति तथा एक पति के साथ एक से अधिक पत्नी की प्रथा का भी प्रचलन है।

आदिवासी मूलक उपन्यासों में सांस्कृतिक चेतना

भारत विशेषत: अपनी संस्कृति के कारण विश्व भर में पहचाना जाता है। अनेकानेक धर्म समुदाय अपने धर्म का पालन पूरे रीति रिवाज से यहां करते हैं। व्यक्ति के साथ-साथ यहां धर्म को अत्यधिक महत्व दिया जाता है। सबकी अपनी-अपनी संस्कृति है। सभी उसी के अनुरूप उसका अनुपालन करते हैं। वर्तमान समय में औद्योगिकीकरण तथा भूमंडलीकरण के दौर में भारत की संस्कृति दिन-ब-दिन लुप्त होती जा रही। ऐसे समय में जनजातीय समाज एक ऐसा समुदाय है, जो अपनी संस्कृति को बनाए रखने के लिए प्रयत्नशील है। जनजातीय समाज का धर्म के प्रति अगाध श्रद्धा है। वे धर्म के द्वारा मनुष्य के व्यवहारों को अनुशासित मानते हैं। सोरोकिन और मैकावर के मतानुसार- "संस्कृति से तात्पर्य मानव की नैतिक आध्यात्मिक और बौद्धिक श्रेष्ठताओं से है।"27

इसी प्रकार टॉयलर संस्कृति के बारे में कहते हैं कि - 'संस्कृति एक जटिल संपूर्ण है जिसमें ज्ञान, विज्ञान, कलाएं, नीति, विधि, रिति-रिवाज और समाज के सदस्य होकर मनुष्य द्वारा अर्जित अन्य योग्यताएं और आदतें शामिल है।'28 जनजातीय समाज दशकों से अपनी संस्कृति को बनाए रखने के लिए सतत प्रयत्नशील है। यही कारण है कि बाजारीकरण के दौर में भारत में जनजातीय समाज अपनी संस्कृति को बचाए रखने में सफल है।

पूजा-पाठ

सभी भारतीयवासी अपने-अपने धर्म अनुसार अपने देवी-देवताओं की पूजा पाठ करते हैं। जिस प्रकार हिंदू समुदाय में गणेश, लक्ष्मी, शिव तथा दुर्गा इत्यादि भगवान की पूजा होती हैं, उसी प्रकार जनजातीय समाज अपने देवी-देवताओं की पूजा करते हैं। उनके देवता स्थान, जाति, प्राणी आदि के आधार पर होते हैं। जैसे सिंगबोगा, वीर देवता, असुर आदि की पूजा-अर्चना होती है। अधिकतर जनजातीय समुदायों में स्थानीय तथा प्रकृति पर आधारित देवता होते हैं। 'ग्लोबल गांव के देवता' उपन्यास में लेखक ने सिंगबोगा देवता की मान्यता को इस प्रकार चित्रित किया है- "अंत में उन अहंकारी दुष्ट असुरों को सजा देने स्वयं भगवान सिंगबोगा ने चर्मरोग वाले लड़के का भविष्य बदला। लूटकूम बुढ़िया के यहां धागा नौकर बनकर रहने लगे। रहते-रहते चालाकी से लालची असुरों को सोने चांदी के लालच में उन्हीं की भट्टी में जलाकर मार

डाला। लौटने को आकाश की ओर बढ़े तो असुर औरतें उनके पैरों में लटक गई। तब सिंगबोगा भगवान ने पैरों को ऐसा झटका की जहां-तहां पहाड़ जंगल झरना नदी में गिरी और भूत बनकर रहने लगी।"[29]

उत्सव-त्योहार

जनजातीय समाज पर्व तथा त्योहारों को पूरे रीति-रिवाजों के साथ मनाते हैं। त्योहार के दिन वे लोग अपनी सारी परेशानी को भूल कर पूरे उल्लास के साथ त्यौहार का आनंद उठाते हैं। आदिवासियों के त्योहारों में हिंदू रीति-रिवाजों की झलक दिखलाई पड़ती है। हर समुदाय के लोग अपनी-अपनी संस्कृति अनुसार त्योहार को मनाते हैं। जैसे गोंड जनजाति में होली के त्यौहार का खास महत्व है। मुंडा जनजाति में सरहूल पर्व का विशेष महत्व है।
वैसे अधिकतर जनजाति में सरहूल तथा करमा पर्व को पूरे मस्ती के साथ मनाया जाता है। संथाल जनजाति के संदर्भ में शिवतोष दास का मंतव्य है कि - "प्रमुख पर्वों में सरो, का सोहराय, पाता काराम आदि मुख्य हैं। ये सोहराय को सबसे बड़ा त्यौहार मानते हैं। बाहा उनका सबसे पवित्र त्यौहार माना जाता है। जब तक गांव में बाहा पर्व नहीं हो जाता है, वनों के नए फूल-फल एवं पत्तों का व्यवहार वर्जित रहता है। एरोक धान बोने के पहले एवं हरियड धान के पौधे कुछ बड़े हो जाने पर मनाते हैं। पाता पर्व पर महादेव की पूजा की जाती है। हनुमान को भी लोग देवता मानते हैं।"30

आदिवासी मूलक उपन्यासों में आर्थिक चेतना

जीविका उपार्जन के विभिन्न रूप

जनजातीय समाज का इतिहास उतना ही पुराना है, जितना कि भारतीय ग्रामीण सभ्यता का, हालांकि आदिवासी समाज के विकास का कोई क्रमिक इतिहास हमारे पास नहीं है लेकिन वर्तमान समय मैं ऐसी कई चीजें मौजूद है, जो कि सदियों पुरानी है। आज भी उसका समाज चलन है। यह कला आदिवासियों की ही देन है आदिवासियों का प्रमुख व्यवसाय कृषि तथा पशुपालन से जुड़ी हुई कार्य करते हैं। इनके संबंध पहले समय में शिल्पकारों से रहा करता था। जिसे छत्तीसगढ़ में गोतया संबंध कह जाता था। ये वर्ग मिट्टी के बर्तनों को आकर्षक देते हैं।

औद्योगिकीकरण युग में मशीनों ने मानव का स्थान ले लिया है। जहां पहले 10 व्यक्ति काम करते थे, वहां सिर्फ एक मशीन ही काफी है। कालिनों में जो चित्र बनाते थे, वे काम मध्यप्रदेश तथा छत्तीसगढ़ के भील, सहरिया, मीणा, मुरिया तथा मडिया आदि जनजाति करते थे। मध्यप्रदेश के झाबुआ एवं धार जिलों में आदिवासियों के द्वारा दीवारों में चित्र अंकित करना

प्रमुख है। जिसे टाटलु चितार तथा भित्ति चित्र कहते हैं। स्थानों तथा जातीयता की दृष्टि से जनजाति समाज के अलग-अलग जीविकोपार्जन के साधन हैं। वर्तमान समय में टैटू निकलवाना एक फैशन बन गया है, परंतु यह भारत के अधिकांश आदिवासियों में गोदना गोदवाना एक प्रथा रही है जिसे स्त्री और पुरुष दोनों के द्वारा निभाया जाता है। छत्तीसगढ़ के कुछ आदिवासियों ने शरीर के गुदना चित्र को कपड़ों एवं कागजों पर बनाना आरंभ किया, जो कि अत्याधिक लोकप्रिय हुआ। साथ ही रोजगार के लिए एक नया पर्याय बना। डॉ. हरीश चंद्र उत्प्रेती जनजातीय अर्थव्यवस्था के प्रति लिखते हैं- "अर्थव्यवस्था की दृष्टि से भारत में जनजातीय समूहों को संकलन एवं शिकार की अवस्था से लेकर औद्योगिक अवस्था तक की विभिन्न श्रेणियों में रखा जा सकता है। उनके कई जीविका उपार्जन के मार्ग हैं जैसे- भोजन एकत्रित करने के संदर्भ में "शिकार एवं मछली पकड़ना, चारागाह, पशुपालन, कृषि एवं व्यापार, लघु उद्योग के आधार पर।"31

उसी प्रकार श्यामराव राठोर के अनुसार जीविका उपार्जन हैं -

- "शिकार करने और भोजन इकट्ठा करने वाली जनजातियां
- पशुपालक
- खेती करने वाली
- उद्योग धंधों में लगी जनजातियां" 32

पश्चिम बंगाल के आदिवासियों ने लकड़ी पर नक्काशी करने की एक नई सोच सामने लाई। महाराष्ट्र के जनजातियों द्वारा त्योहारों तथा उत्सव में नृत्य नर्तकियों द्वारा उपयोग में लाई जाने वाली मुखौटा बनाने का कार्य किया। आगे चलकर कोकना आदिवासियों द्वारा उनके इस हस्त कौशल का प्रयोग आर्थिक व्यवस्था को सुधारने के लिए किया गया। इस प्रकार स्थान तथा जातीयता के आधार पर जनजातियों का अर्थोपार्जन के लिए विभिन्न साधन है।

स्त्रियों का आर्थिक योगदान

मकान को घर बनाने वाली एक स्त्री ही होती है। बिना स्त्री के परिवार की संकल्पना पूरी नहीं हो सकती है। वह स्त्री ही होती है जो शून्य से शुरू कर परिवार को अच्छे मुकाम तक ले जाती है। जनजातीय समाज की स्त्रियां केवल मानसिक ही नहीं बल्कि शारीरिक रूप से भी संबल है। अधिकतर उपन्यासों में बताया गया है कि जनजातीय स्त्री पुरुषों की अपेक्षा अधिक मेहनतकश होती हैं और उन्हीं पर उनका परिवार निर्भर होता है। कई समस्याओं का सामना करते हुए ये स्त्रियां हालात के आगे सिर नहीं झुकाती है, इस संदर्भ में डॉ. माया प्रसाद का कहना है कि "एक बड़ी संख्या ऐसे आदिवासी महिलाओं की है जिनकी जीविका वनोपज पर है। जंगलों से लकड़ियां काट कर तेंदू के पत्ते तथा जड़ी-बूटी बीनकर उनका व्यवसाय करने वाले इन स्त्रियों की स्थिति और भी भयावह है, वे केवल आर्थिक बदहाली का शिकार नहीं है, अपितु शोषण के उस जाल में फंसी हुई हैं, जिनका एक सिरा जंगलात के अधिकारियों, कर्मचारियों के

हाथ में है, तो दूसरा विचौलियों, व्यापारियों के मुट्ठी में, अपने परिवार के लिए दो जून भात जुटाने की कोशिश में लगी इन श्रमजीवी स्त्रियों के आर्थिक, दैहिक शोषण का सिलसिला सुरक्षा के तमाम सरकारी आश्वासनों के बावजूद आज भी जारी है।"[33] जनजातियों में कई त्योहारों में से एक त्योहार ऐसा है कि जिसमें महिलाएं जनीशिकार के लिए पुरुषों का वस्त्र धारण कर अकेले जंगल में जाती हैं। स्त्री की संबलता को 'पठार का कोहरा' उपन्यास में संजीव के माध्यम से व्यक्त किया गया है कि "मात्र एक पतली धोती बांधे और औरतें पीठ पर बच्चे बांधकर घर और बाहर दोनों के काम यूं निपटाती हैं मानो वे इसी प्रकार मरने-खपने और बच्चे जनने को ही बनी हो। हड्डियां चिंचोड़ते बच्चे।... संजीव को लगता है किसी दिन इन छातियों में से दूध की बजाय रक्त न रिस पड़े।"[34]

'पिछले पन्ने की औरतें' उपन्यास में औरतों को अपने आलसी और सुस्त पुरुषों के कारण अपनी देह का व्यापार करना पड़ता है। परिवार का पेट पालने के लिए इसके अलावा इनके पास और कोई रास्ता नहीं है। उपन्यास के जरिए लेखक ने कहा है कि "बेड़नियों ने अपना सामाजिक स्थान निर्धारित करने की दृष्टि से लोकनर्तकी का जीवन अपनाया किंतु आलसी और सुस्त पुरुषों वाले इस समुदाय के भरण-पोषण के लिए मात्र नाच गाकर पर्याप्त पैसा नहीं कमाया जा सकता था। पैसा कमाने का सबसे 'शॉर्टकट' अर्थात छोटा रास्ता था देह व्यापार। जो की पीढ़ियों से इस समुदाय की औरतें करती आ रही थी। अत: यह उनके लिए किसी भी अपराध बोध से परे था।"[35]

'रेत' उपन्यास की कमला बुआ पूरे सदन पर नियंत्रण रखती हैं। कमला बुआ के चरित्र को देखने से ज्ञात होता है कि औरत चाहे तो अपने आप को हर तरह से मजबूत करती है यहां तक कि पुरुष सत्ता समाज होने के बावजूद सारे निर्णय खुद लेती है, वैद्य जी सिर्फ एक सलाहकार है, जिसे बुआ ने ही रखा है। कमला बुआ के लिए सारे नौकरी और देह व्यापार एक समान ही है। कमला बुआ कहती है कि "जैसे इज्जतदार अपनी मेहनत बेचते हैं न वैसे ही हम अपनी देह बेचते हैं, हमारे लिए तो हमारी यह देह ही हमारी मेहनत है, हमारे लिए तो दूसरे कामों की तरह आम काम है।"[36] अपने समाज तथा परिवार का जीवन स्तर ऊंचा उठाने के लिए रुक्मणी, सावित्री मल्होत्रा आदि लोगों से मिलकर समाज सेविका बनती हैं और जनजाति महिला उद्धार सभा की प्रमुख पद पर आसीन होती है।

इस प्रकार उपर्युक्त उपन्यासों में जीविकोपार्जन के लिए महिलाएं हर तरह से अपना योगदान देती है उन्हीं की बदौलत उनके परिवार का पेट पलता है।

इस प्रकार पठार पर कोहरा, रेत, धूणी तपे तीर आदि उपन्यासों में भ्रष्टाचार के कारण सरकारी योजनाओं की असफलताओं का चित्रण साहित्यकारों ने किया है।

निष्कर्ष

मानव सभ्यता के विकास के सूत्र जानना हो तो हमें जनजातीय जीवन की ओर रुख करना होगा। उनका जीवन, रीति-रिवाज, परंपराएँ, मान्यताएँ आदि की अपनी मौलिकता है, जो सभ्य समाज से अलग है। जनजातीय जीवन में सचाई और जीवन जीने की अदिम लालसा परिलक्षित होती है। उनके जीवन का झूठ, फरेब और धोखे का दूर-दूर तक कोई संबंध नहीं है। वर्तमान समय में विकसित समाज के लोगों ने उनका जीवन मुश्किल कर रखा है। विकास और सुविधा के नाम पर उनका अत्यधिक शोषण किया जा रहा है। जमींदार, पुलिस और सरकारी-तंत्र ने मिलकर उनका जीना दुश्वार कर रखा है। उनके लिए प्राणों से भी बढ़कर जंगल तथा जमीन को हड़पकर ये लोग उन्हें विवशता का जीवन जीने के लिए मजबूर कर रहे हैं। आदिवासी समाज को केंद्र में रखकर लिखे जाने वाले उपन्यासों में उनके जीवन के यथार्थ को मुखरित किया गया है।

मैंने अपने इस शोध प्रकल्प में स्वतंत्रता के बाद के कुछ उपन्यास और समकालीन हिन्दी उपन्यासों में वर्णित जनजातीय समाज की संघर्ष-गाथा को जानने-समझने का प्रयास किया है। इस लेख में जनजातीय जीवन की अवधारणा, पर प्रकाश डालते हुए जनजाति मूलक उपन्यासों का समान्य परिचय भी दिया गया है। इसके साथ ही उपन्यासों में वर्णित राजनैतिक चेतना, सामाजिक चेतना, सांस्कृतिक चेतना तथा आर्थिक चेतना का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

संदर्भ ग्रंथ

1. वैरियर एल्विन 1943)द अबोरिजिनलस ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस बंबई पृष्ठ-7
2. मीणा जगदीश चंद्र (2003) भील जनजाति का सांस्कृतिक एवं आर्थिक जीवन हिमांशु पब्लिकेशंस उदयपुर राज पृष्ठ 5
3. भारतीय आदिवासियों की सांस्कृतिक प्रकृति, पूजा और पर्व-त्योहार पृष्ठ 16
4. आदिवासी विमर्श: स्वस्थ जनतांत्रिक मूल्यों की तलाश डॉ.वीरेंद्र सिंह यादव, डॉ. रावेन्द्र कुमार साहू पृष्ठ 5
5. ज्ञान चंद्रगुप्त : आंचलिक उपन्यास अनुभव और दृष्टि, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1995, पृष्ठ सं. 113
6. रांगेय राघव कब तक पुकारूँ राजपाल एंड सन्स नयी दिल्ली 2009 पृ.सं. 107
7. रांगेय राघव, कब तक पुकारूं, राजकमल प्रकाशन, 1957, पृष्ठ सं. 444.

8. अपनी mati.com राजेंद्र प्रसाद खीचड़ पृष्ठ 1
9. (http://kosh.khsindia.org/hindi/%E0%A4%B8.%E0%A4%AA%E0%A5%82.%E0%A4%85%E0%A4%82%E0%A4%95-13,%E0%A4%85%E0%A4%95%E0%A5%8D%E0%A4%9F%E0%A5%82-%E0%A4%A6%E0%A4%BF%E0%A4%B8-2011,%E0%A4%AA%E0%A5%83-182
10. हिंदी की जनजातिक मूलक उपन्यासों की समाजशास्त्रीय चेतना और उसका औपन्यासिक प्रतिफलन डॉक्टर सरोज अग्रवाल पृष्ठ 75
11. वन के मन में 1962 पृष्ठ प्रस्तावना-1 आत्माराम एंड संस दिल्ली प्रथम संस्करण पृष्ठ संख्या एक
12. योगेंद्र सिन्हा वन के मन मे आत्माराम एंड संस प्रथम संस्करण 1962 पृष्ठ 89
13. वही पृष्ठ संख्या 128
14. कलसवा प्रो बी के हिंदी में आदिवासी जीवन केंद्रित उपन्यासों का समीक्षात्मक अध्ययन मंचूर प्रकाशन दिल्ली प्रथम संस्करण 2009 पृष्ठ संख्या 72-73
15. राकेश कुमार सिंह पठार पर कोहरा पृष्ठ 54
16. राकेश कुमार सिंह पठार पर कोहरा पृष्ठ 11
17. राकेश कुमार सिंह पठार पर कोहरा पृष्ठ 13
18. राकेश कुमार सिंह पठार पर कोहरा पृष्ठ 108
19. राकेश कुमार सिंह पठार पर कोहरा पृष्ठ 112
20. राकेश कुमार सिंह पठार पर कोहरा पृष्ठ 112
21. राकेश कुमार सिंह पठार पर कोहरा पृष्ठ 125
22. कथादेश अक्टूबर 2006 मनोज कुलकर्णी 'पठार पर कोहरा' झारखंड के आदिवासियों का जीवन संघर्ष पृष्ठ 23
23. राकेश कुमार सिंह, पठार पर कोहरा, प्रथम संस्करण, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली पृष्ठ 1
24. तेजिंदर सिंह काला पादरी प्रकाशित लेख नेशनल पब्लिशिंग हाउस पृष्ठ 44-45
25. संपादक डॉ. उषा कीर्ति राणावत, डॉ. सतीश पांडे, डॉ. शीतला प्रसाद दुबे, अतुल प्रकाशन, पृष्ठ 78
26. डॉ. महेंद्र कुमार मिश्रा, भारतीय समाज में जनजाति अवधारणाएं, श्रुति पब्लिकेशन, जयपुर, संस्करण 2008, पृष्ठ संख्या 45

27. डॉ. महेंद्र कुमार मिश्रा, भारतीय समाज में जनजाति अवधारणाएं, श्रुति पब्लिकेशन, जयपुर, संस्करण 2008, पृष्ठ 30
28. डॉ. महेंद्र कुमार मिश्रा, भारतीय समाज में जनजातीय अवधारणाएं, श्रुति पब्लिकेशन, जयपुर, पृष्ठ 31
29. रणेन्द्र 'ग्लोबल गांव के देवता', भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, तीसरा संस्करण 2011, पृष्ठ 43
30. शिवतोष दास, भारतीय जनजातियां, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1993, पृष्ठ संख्या 84
31. डॉ. हरीशचंद उत्प्रेती - भारतीय जनजातियां : संरचना एवं विकास, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, तृतीय संस्करण 2007, पृष्ठ 294
32. डॉ. श्याम राव राठौड़, साठोत्तर हिंदी उपन्यासों में आदिवासी जन-जीवन, मिलिंद प्रकाशन, हैदराबाद, प्रथम संस्करण, 2010, पृष्ठ 39
33. भारतीय आदिवासी, डॉ. लक्ष्मण प्रसाद सिन्हा, पृष्ठ 90
34. 'पठार पर कोहरा' राकेश कुमार सिंह, पृष्ठ 138
35. पिछले पन्ने की औरत, शरद सिंह, पृष्ठ 140
36. रेत, भगवानदास मोरवाल, पृष्ठ 144